Indian Streams Research Journal
Vol -1 , ISSUE –2, March – 2011
ISSN:- 2230-7850
Available online at www.isrj.net

ORIGINAL ARTICLE

सिनेमा मे शोध

रेणु सिंह

सहायक प्रोफेसर , जनसंचार विभाग . महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय.

सारांश

सिनेमा अवश्य ही कला का एक रूप है। सिनेमा निर्माताओं को एक श्रव्य–दृश्य के फिल्मांकन के लिए कई आवश्यक निर्णय लेने होते हैं। इस प्रक्रिया मे शॉट के दृष्टिकोण चयन से लेकर सम्पादन तक निर्देशक अपने सृजनशक्ति एवं कला कौशल का प्रयोग करता है। यह शोध लेख इस मुददे पर प्रकाश डालता है कि अवश्य ही सिनेमा बनाने मे निर्माता को अपनी कलात्मक स्वतंत्रता होनी चाहिए परंतु सिनेमा के विषय चयन के लिए समाजिक सर्वेक्षण करने की आवश्यकता है।

प्रस्तावना

भारतीय सिनेमा बहुत जल्द हीं अपने सौ साल पूरे करने वाला है । सिनेमा को हमेशा से पूर्ण उधोग का दर्जा देने की मांग उठती रही है । आज का सिनेमा व्यवसाय निश्चित रूप से पहले से ज्यादा संगठित, खर्चीला और व्यावसायिक हो गया है। एक एक सिनेमा के निर्माण में करोड़ो रुपये और आपार संसाधन लगाये जा रहे है। इसलिए सिनेमा को भी पूर्ण उधोग का दर्जा देने की मांग स्वाभाविक है। परंतु सिनेमा को एक उधोग का दर्जा देने की मांग करने से पहले सिनेमा से जुड़े लोंगों को यह सोचना होगा कि सिनेमा बनाने से पहले सिनेमा से जुड विभिन पहलुओ पर शोध करने की आवश्यकता है।

शोध किसी भी कार्य को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। शोध दर्शको के मनोविज्ञान तथा उनके आवश्यकताओ की परख करता है। बॉलीवुड को यह मानना होगा कि "ग्राहक ही भगवान है" और वह जो चाहे वही हमे बड़े पदे पे दिखाना होगा। परंतु आज स्थिति ऐसी नही है, भारतीय जनमानस वही सिनेमा देखती है जो सिनेमा जगत बनाती है या दिखाती है। यदि कोई फिल्म सफल हो जाती है तो उसी पटकथा पर आधारित दो– तीन नई फिल्में बनाई जाती है जो ज्यादातर असफल साबित होती है। आज का दर्शक नकल को ज्यादा समय तक बर्दाश्त नही करता है।

हर आयु वर्ग के दर्शक की पसंद अलग होती है। जिस तरह से दूसरे मीडिया जैसे प्रिंट मीडिया दृ अखबार, पत्रिका इत्यादि या इलेक्ट्रोनिक मीडिया अपने दर्शको के लिए अलग– अलग विशेषांक या चौनल द्वारा अपनी ओर आकर्षित करन कि कोशिश करते हैं उसी तरह सिनेमा को भी विभिन्न आयु वर्ग, क्षेत्र तथा सामाजिक स्तर के दर्शकों के पसंद–नापसंद तथा उनकी समस्याओ को ध्यान में रखकर फिल्में बनानी चाहिए।

भारतीय फिल्मों का कभी भी विकेन्द्रीकरण नहीं किया गया है। हालाकि फिल्में भाषाई तार पर अवश्य ही विकेंद्रित हैं परंतु मुददों तथा आयु वर्ग को अपना लक्ष्य बनाकर ज्यादा फिल्में नही बनाई जाती हैं। भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक सरकार में कई ऐसे ज्वलंत मुद्दे हैं जिसे रोचक तरीके से सिनेमा के पर्दे पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

भारत एक देश के अंतर्गत अनेक देशो का समिश्रण है इसलिए एक सफल फार्मूले की नकल कर एक बड़ दर्शक वर्ग के लिए फिल्म बनाने से बेहतर है छोटे– छोटे वर्गो को अपना लक्ष्य बनाकर उनकी समस्याओ तथा मुद्दों को रोचक तरीके से पेश किया जाए। बॉलीवुड का अगर ट्रेंड हम देखें तो लगभग हर साल अनेकों फिल्में फ्लॉप होती हैं। अगर हम फिल्म जगत को एक उधोग की तरह संचालित करना चाहते हैं तो हमे उधोगों के तौर तरीके अपनाने होंगे।

सिनेमा और समाज

सिनेमा और उद्योग मे एक बहुत बड़ा अंतर यह है कि उद्योग उत्पादों का निर्माण करता है तो सिनेमा समाज का निर्माण करता है। उद्योग मांग और आपूर्ति के सिद्धांतों पर कार्य करता है लेकिन सिनेमा नहीं। उद्योग को मात्रा के साथ गुणवता को पुरा करने की चुनौती होती है लेकिन सिनेमा को नहीं। उद्योग का प्रभाव समाज के भौतिक साधनो से जुड़ा हुआ है परन्तु सिनेमा का प्रभाव समाज के मानसिकता से जुड़ा हुआ है। अतः सिनेमा का समाज से प्रत्यक्ष और गहरा संबंध है। भारत जैसे देश मे जहाँ फिल्मे काफी लोकप्रिय है तथा हमेशा से स्वस्थ समाज निर्माण मे सहायक रही है वहाँ इसे एक उद्योग मानना आसान नहीं होगा । सिनेमा हमारे देश मे हमेशा स समाज के सभी वर्गो द्वारा देखा और समझा जाता है इसलिए यह जनमानस का एक सफल जनसंचार का माध्यम भी है।

सिनेमा मे दिखाये जाने वाला एक एक चरित्र समाज को प्रभावित करता है । समाज के कई लोग तो इसे अपना आदर्श मान कर इसे अपने निजी जीवन मे भी उतारने का प्रयास करत है। यदि सिनेमा का कोई चरित्र जनमानस मे आदर्श ना भी बने तो दर्शक के मानसपटल पर अपना एक छाप जरूर छोड़ जाता है और दर्शक उस बिन्दु पर कभी कभार सोचता ही है। अगर सिनेमा की पटकथा समाज से जुड़ सकारात्मक पहलुओ पर होगी तो इसका प्रभाव भी निश्चित रूप से सकारात्मक होगा और एक विकासशील जनसमाज का निर्माण होगा। इसके विपरीत यदि सिनेमा की पटकथा भड़काऊ, मारधाड़ और नकारात्मक मुददों पर होगी तो उसका प्रभाव भी समाज मे नकारात्मक हीं होगा।

सिनेमा मे दर्शाये गए नकारात्मक दृश्यों का सबसे ज्यादा प्रभाव हमारी नई पीढो पर होता है। आज यह चर्चा सामान्य है कि बिभिन्न संचार माध्यमों के प्रभाव से आज का युवा वर्ग समय से पहले प्रोढ़ हो रहा है। सिनेमा भी इन्ही संचार माध्यमों मे से एक सशक्त संचार माध्यम है। अतः सिनेमा को पूर्ण रुप से उद्योग के नजरिए से देखना उचित नहीं होगा क्योंकि सिनेमा व्यवसाय केवल लाभ हानी से हीं नहीं बल्कि अन्य पहलुओ जैसे कला, समाज निर्माण इत्यादि से भी जुड़ा हुआ है।

सिनेमा और शोध

शोध मुखयतः दो प्रकार का होता है, पहला संख्यात्मक शोध एवं दूसरा गुणात्मक शोध। किसी क्षेत्र मे संख्यात्मक शोध तो किसी क्षेत्र मे गुणात्मक शोध की प्राथमिकता हो सकती है। हम सभी जानते है कि किसी भी शोध कार्य मे शोधकर्ता की पृष्टभूमि का कुछ ना कुछ पछपाती प्रभाव शोधकार्य पर पड़ता है जैसे शोधकर्ता का शोधकार्य की गणनात्मक विधि की जानकारी, शोधकर्ता का पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश, शोधकर्ता का व्यक्तिगत सोच इत्यादि। हम यह भी जानते है कि संख्यात्मक शोध, गुणात्मक शोध कि तुलना मे आसान और सटीक होता है। संख्यात्मक शोध मे लगभग सभी पहलु निश्चित रहते है इसकी कल्पना करने की जरूरत नहीं पड़ती है परंतु गुणात्मक शोध मे बहुत सारे पहलुओ की कल्पना करने की आवश्यकता होती है। संख्यात्मक शोध को लगभग सीधा–सीधा और परिभाषित नियम होता है लेकिन गुणात्मक शोध मे ऐसा नहीं होता है। इसलिए गुणात्मक शोध के लिए एक बहुत हीं जानकार एवं खुले दिमाग वाले शोधकर्ता की आवश्यकता होती है ताकि गुणात्मक शोध के बिभिन्न एवं पर्याप्त पहलुओ को ध्यान मे रखते हुए शोध का निष्कर्ष निकले।

जिस तरह आज स्पर्धा के दौर मे कोई भी उधोग अपने किसी भी उत्पाद को बनाने से पहल बाजार का एक सर्वेक्षण कराता है ताकि यह पता चल सक कि किन वस्तुओ की मांग है और बाजार मे उपलब्ध प्रतिद्वंदी के उत्पाद मे क्या खामिया या अच्छाईयां है। इसी प्रकार फिल्मों मे भी ऐसे सर्वेक्षण करने की आवश्यक हैं। यदि सिनेमा को एक कला के रूप मे माने तो यह स्पष्ट है कि कोई भी कला किसी भी सीमा या फोर्मूले के अंतर्गत नही बंध पाती है। कला की उत्पत्ति कलाकार के दिल–दिमाग से होती है। परंतु सिनेमा को संचार माध्यम मान कर फिल्में बनाई जाए जिसमे सर्वेक्षण इस बात पर हो कि फिल्में आखिर समाज के किन ज्वलंत मुद्दों पर बनाई जा सकती हैं दृतो शायद सही मायनों मे सिनेमा आम आदमो की आवाज बनकर उभरेगी। ऐसी फिल्में समाज के विभिन्न आय वर्ग, आयु वर्ग, प्रदेश एवं जाति को प्रस्तुत कर सकेगी। इन विषयों को रोचक तरीकों से पेश करने की स्वतन्त्रता अवश्य ही निर्देशक या पटकथा लेखक को मिलनी चाहिए– जिसकी हर कला प्रेमी प्रशंसा कर सके।

निष्कर्ष

सिनेमा एवं उद्योग के बिभिन आधारभूत पहलुओं और विभिन्नता को ध्यान मे रख कर गणना किया जाए तो यह सहज हीं सिद्ध होता है कि सिनेमा के क्षेत्र मे भी बहुत हीं व्यापक गुणात्मक शोध की आवश्यकता है। चूंकि गुणात्मक शोध एक बहुत हीं जटिल एवं बहुआयामी शोध कार्य है अतः इसके लिए एक अच्छे एवं जानकार गुणात्मक शोधकर्ता की आवश्यकता है। जिससे सामाजिक, कला एवं मनोरंजन के साथ साथ बिभिन्न सामाजिक पहलुओ को उजागर करते हुए सिनेमा बने और उसका जनमानस के मानसिक पटल पर सकारात्मक प्रभाव पड़।

संदर्भ

1. गाँटी , टी. (2004). बॉलीवुड ए गाइडबुक टु पॉपुलर हिन्दी सिनेमा; न्यू यॉर्क; रौटलेज।
2. मिश्रा, वी. (2002). बॉलीवुड सिनेमा टेंपल्स ऑफ डिजायर; न्यू यॉर्क रौटलेज।
3. http://subcortex.com/WhenIsFilmArtPrinz.pdf
4. http://en.wikipedia.org/wiki/Cinema_of_India